Introduction

:: प्राक्कथन ::

साहित्य की सभी विधाओं में उपन्यास मुझे प्रारंभ से ही आकर्षित करता रहा है । अतः हाईस्कूल के दिनों से ही अन्य विषयों से समय चुराकर उपन्यासों को पढ़ने का एक उपक्रम बन गया था । इसके कारण अभिभावकों से मुझे डांट भी खानी पड़ी है । परन्तु मेरे पिता भी अंग्रेजी तथा हिन्दी साहित्य में एम.ए. हैं, अतः जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि मैं हिन्दी के मानक और स्तरीय लेखकों को पढ़ती हूं और मेरी भावकता की कोटि "सतृणाभ्यवहारी" प्रकार की नहीं है, अपितु "तत्त्वाभिनिवेशी" है, तो उन्हें संतोष हुआ और अच्छे लेखकों को पढ़ने के लिए प्रेरित करते रहे । इस प्रकार मेरी साहित्यिक रुचि के गठन में उनके संस्कार भी हैं । और इस तरह मैं प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अश्क, यशपाल, अमृतलाल नागर, अज्ञेय प्रभृति औपन्यासिकों के उपन्यास पढ़ती गई । अब तक यह ज्ञात हो चुका था कि मनुष्य और विभिन्न प्रदेशों के जन-जीवन को पढ़ने-जानने-समझने के लिए उपन्यास से बेहतर कोई दूसरा साहित्य रूप हो ही नहीं सकता ।

मनुष्य और मानव-व्यवहार उसका अवलोकन-परीक्षण मेरी रुचि के विषय रहे हैं । उपन्यास का अध्ययन उसे और पुष्ट करता है । फिर काव्य प्रयोजनों से "व्यवहारविदे" और "शिवेतरक्षतये" के नये अर्थघटन सामने आये । उपन्यास इन दोनों प्रयोजनों के उचित संवाहक हो सकते हैं, यह अनुभव हुआ और इस प्रकार यह साहित्य-रूप और भी आकर्षित करने लगा । एम.ए. के दूसरे खण्ड में वैकल्पिक प्रश्नपत्र या विशेष-प्रश्नपत्र में जब विकल्प का प्रश्न आया, तब मेरे सामने किसी प्रकार की द्विधात्मक स्थिति नहीं थी । अतः आंख बन्द करके वैकल्पिक परचे के रूप में मैंने उपन्यास को लिया । यह प्रश्नपत्र देसाई साहब पढ़ाते थे । इसके कारण मेरे औपन्यासिक अध्ययन की रुचि और

भी विस्तृत और व्यापक होती गई । रुचि और अध्ययन की दिशा एक हो गए थे । अतः मैंने निर्णय कर लिया था कि एम.ए. के उपरांत यदि आगे पढ़ने-बढ़ने का मौका मिला तो उपन्यास के क्षेत्र में ही कुछ काम करेंगे ।

एम.ए. के पश्चात् जब मैं देसाई साहब के पास गयी और अपनी इच्छा — पी-एच.डी. करने के संदर्भ में — प्रकट की तो उन्होंने बताया कि यदि मैं उनके ही निर्देशन में काम करना चाहती हूं, तो मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । मैंने अपनी सहमति प्रकट की । परन्तु इस प्रतीक्षा-काल में उन्होंने मुझे शोध-प्रविधि के नियमों और सिद्धान्तों से प्रशिक्षित किया । तब मुझे ज्ञात हुआ कि अपनी वैयक्तिक अभिरुचि हेतु उपन्यास पढ़ना और उस पर शोध-कार्य करना ये दोनों भिन्न बातें हैं । हालांकि यह भी उतना ही सच है कि अभिरुचिगत अध्ययन से शोध-कार्य का मार्ग थोड़ा सुकर, थोड़ा आसान अवश्य हो जाता है ।

यहां मुझे यह ज्ञात हुआ कि एक स्वतंत्र आलोचनात्मक लेख या निबंध तथा शोध-लेख या शोध-प्रपत्र या आलेख में क्या अंतर है । किसी विषय पर स्वतंत्र रूप से, आलोचनात्मक ढंग से पुस्तक लिखना एक बात है, किन्तु किसी विषय को लेकर शोध-प्रबंध की रचना एक दूसरी बात है । उसमें अनेक बातों का ध्यान रखना पड़ता है । सर्व-प्रथम तो उन्होंने मुझे शोध से संबंधित कुछ पारिभाषिक शब्दावली का परिचय दिया । पाद-टिप्पणी तथा उसे दर्ज करने की वैज्ञानिक पद्धति क्या हो सकती है, संदर्भ-ग्रन्थ या संदर्भ-संकेत तथा संदर्भिका — ग्रन्थानुक्रमणिका (Bibliography) तैयार करने की वैज्ञानिक विधि क्या है, इसके लिए प्रारंभ से ही क्या-क्या तैयारियाँ अपेक्षित हैं इन सब महत्त्वपूर्ण बातों के प्रबोधन के पश्चात् शोध-प्रविधि और अनुसंधान के संदर्भ में कतिपय ग्रन्थों को देख जाने के लिए कहा जिनमें

निम्नलिखित मुख्य हैं — "नवीन शोध-विज्ञान" (डा. तिलकसिंह), शोध और सिद्धान्त " (डा. नगेन्द्र), "हिन्दी अनुसंधान : स्वरूप और विकास " (डा. ध. ह. राजूरकर), "इतिहास और आलोचना" (डा. नामवरसिंह), शोध-विशेषांक (हिन्दी अनुशीलन), संदर्भ-कोश (डा. मक्खनलाल शर्मा) आदि-आदि ।

उपर्युक्त प्रविधि-विषयक ग्रन्थों के पश्चात् कुछ प्रकाशित औपन्यासिक शोध-प्रबंधों के अवलोकन का उपक्रम शुरू हुआ। एतद्विषयक जिन ग्रन्थों को मैंने देखा उनमें निम्न मुख्य उल्लेखनीय कहे जा सकते हैं : " हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन " (डा. एस.एन. गणेशन), "हिन्दी उपन्यास " (डा. सुषमा प्रियदर्शिनी), " हिन्दी उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव " (डा. भारतभूषण अग्रवाल), " हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद " (डा. त्रिभुवनसिंह), "हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन " (डा. देवराज), आधुनिक हिन्दी उपन्यास और अन्तर्जीवन " (डा. शिवशंकर राय), "हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी (डा. राजरानी शर्मा), "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास " (डा. पारुकान्त देसाई), "हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक संदर्भ (डा. उषा मंत्री) , "हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास " (डा. मुद्गल), " प्रेमचन्दयुग का हिन्दी उपन्यास " (डा. मोहनलाल रत्नाकर), " प्रेमचन्द के उपन्यास : कथा-संरचना " डा. मीनाक्षी श्रीवास्तव), "शरत एवं जैनेन्द्र के उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्प " (डा. निर्मला शर्मा), "जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल (डा. विद्युतप्रभा प्रकाश) आदि-आदि ।

इस प्रकार निरंतर एक वर्ष के गहन शोधपरक अध्ययन -अनुशीलन के उपरांत " प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन " विषय पर दिनांक 15-6-99 को पी-एच. डी. उपाधि

हेतु पुंजीकरण हुआ । अध्ययन की सुविधा तथा शोध-प्रबंध की समुचित नियोजना हेतु शोध-प्रबंध को निम्नलिखित आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है :—

(1) विषय-प्रवेश
(2) प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के उपन्यासों का कथ्य
(3) प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्र
(4) जैनेन्द्र के उपन्यासों में चित्रित नारी-पात्र
(5) प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों का तुलनात्मक विवेचन : पात्रों के वर्गीकरण की दृष्टि से
(6) प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों का तुलनात्मक विवेचन : विभिन्न आधारों पर (1)
(7) प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों का तुलनात्मक विवेचन : विभिन्न आधारों पर (2)
(8) उपसंहार

प्रथम अध्याय विषय-प्रवेश में विषय को प्रवर्तित करते हुए उपन्यास में नारी-पात्रों की केन्द्रवर्ती स्थिति को चिह्नित करने का यत्न हुआ है । इस चर्चा को प्रास्ताविक शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है । तत्पश्चात् आधुनिक काल में हिन्दी उपन्यास के विकास के कारणों पर प्रकाश डालते हुए गद्य का विकास, अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार, पुनर्जागरण की प्रवृत्तियाँ, औद्योगिकरण की प्रवृत्ति, औद्योगिकरण की विशेषताएँ इत्यादि को रेखांकित किया गया है । यहाँ भारत में औद्योगिकरण के विकास तथा उसके प्रभावों को भी रेखांकित किया है । भारतीय सामाजिक जीवन और उसमें स्त्रियों की स्थिति को प्रभावित करने वाले कारणों में नगरीकरण भी एक है, अतः परिवार पर नगरीकरण के प्रभावों को विवेचित किया गया है । इसी अध्याय में बहुत संक्षेप में हिन्दी के उपन्यास के विकास को देने का उपक्रम भी रहा है । शोध-प्रबंध के केन्द्र में हिन्दी उपन्यास-साहित्य

के दो महान हस्ताक्षर — प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र — रहे हैं ; अतः लगभग सन् 1980 तक के औपन्यासिक विकास के प्रमुख बिन्दुओं को उकेरने की चेष्टा रही है , क्योंकि प्रेमचन्द का निधन तो सन् 1936 को हो गया था , किन्तु जैनेन्द्र लेखन में लगभग सन् 1985 तक सक्रिय रहे हैं । उनका अंतिम उपन्यास "दशार्क" सन् 1985 में प्रकाशित हुआ है । उसके तीन वर्ष बाद जैनेन्द्र का निधन हुआ था । प्रेमचन्दोत्तर औपन्यासिक प्रवृत्तियों में सामाजिक उपन्यास , ऐतिहासिक उपन्यास, मनोवैज्ञानिक उपन्यास , समाजवादी उपन्यास , आंचलिक उपन्यास , पौराणिक उपन्यास , राजनीतिक उपन्यास , व्यंग्यात्मक उपन्यास आदि को परिगणित कर सकते हैं ; अतः संक्षेप में प्रत्येक प्रवृत्ति पर भी प्रकाश डाला गया है । प्रत्येक लेखक के लेखन में , उसकी विचारधारा के मूल में , उसके गठन में वैविध्य विचार-प्रवाह भी कारणभूत होते हैं । अतः इसी अध्याय में आलोच्य लेखकों के समय तक विकसित नारी-विषयक विभावना और उसके विमर्श को विश्लेषित करने का एक संनिष्ठ प्रयास हुआ है । अध्याय के अन्त में निष्कर्ष और संदर्भानुक्रम दिए गए हैं ।

प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के उपन्यासों में निरूपित नारी-पात्रों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत शोध-प्रबंध का विषय है , अतः द्वितीय अध्याय में बहुत संक्षेप में इनके औपन्यासिक साहित्य के कथ्य पर प्रकाश डाला गया है ; क्योंकि उसके अभाव में उनके नारी पात्रों पर विचार करना समीचीन न होता । प्रेमचन्द के उपन्यासों में सेवासदन, वरदान , प्रतिज्ञा , निर्मला , गबन , प्रेमाश्रम , कायाकल्प , कर्मभूमि , रंगभूमि , गोदान , मंगलसूत्र [अपूर्ण] इत्यादि उपन्यासों को लिया गया है तो जैनेन्द्र के उपन्यासों में परख , सुनीता , त्यागपत्र , कल्याणी , सुखदा , विवर्त , व्यतीत , जयवर्द्धन , मुक्तिबोध , अनंतर , अनामस्वामी तथा दशार्क आदि को लिया गया है ।

तृतीय अध्याय में प्रेमचन्द के उपन्यासों में निरूपित प्रमुख नारी पात्रों को उकेरा गया है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं : विरजन, सुवामा, सुशीला, माधवी [वरदान]; सुमन, शान्ता, भोली, सुमन की माँ गंगाजली [सेवासदन]; विद्या, श्रद्धा, गायत्री, विलासी, शीलमणि [प्रेमाश्रम]; सोफिया, जाह्नवी, इन्दु, सुभागी [रंगभूमि]; मनोरमा, रानी देवप्रिया, अहल्या, लौंगी [कायाकल्प]; जालपा, रतन, जग्गो, मानकी, जोहरा [गबन]; निर्मला, कृष्णा, रुक्मिणी, सुधा, कल्याणी, रुक्मिणी [निर्मला]; सुखदा, सकीना, पठानिन, मुन्नी, सलोनी, रेणुका, नैना [कर्मभूमि]; पूर्णा, प्रेमा, सुमित्रा [प्रतिज्ञा]; धनिया, मालती, सिलिया, झुनिया, रूपा, सोना, नोहरी, मीनाक्षी, चुहिया [गोदान]; पुष्पा, तिब्बी, शैव्या, मिस बटलर [मंगलसूत्र]। घटनाओं के घात-प्रतिघात द्वारा उनके चरित्र की रेखाओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न यहाँ हुआ है।

चतुर्थ अध्याय में जैनेन्द्र के उपन्यासों में निरूपित नारी-पात्रों को रखा गया है, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :— कट्टो, गरिमा, कट्टो की माँ, सत्यधन की माँ, गरिमा की माँ [परख]; सुनीता, सत्या, माधवी, सुनीता की माँ [सुनीता]; मृणाल, मृणाल की भाभी, शीला, राजनन्दिनी [त्यागपत्र]; कल्याणी, वकील साहब की पत्नी, हैल्थ ऑफिसर की पत्नी [कल्याणी]; सुखदा, सुखदा की माँ [सुखदा]; भुवनमोहिनी, तिन्नी, मिथिला [विवर्त]; अनिता, सुमिता, उर्मिला, चन्द्री, झुमिया, नीला, कपिला [व्यतीत]; इला, एलिजाबेथ [जयवर्द्धन]; नीलिमा, राजश्री, समारा, अंजलि [मुक्तिबोध]; अपरा, वाणी, वनानि, रामेश्वरी [अनंतर]; उदिता, वसुंधरा, कुंतला [अनाम-स्वामी]; रंजना उर्फ सरस्वती, प्रेमलता, मधुरिमा, पारमिता, मैहदी, मालती, सकीना [दशार्क] आदि-आदि। इन नारी पात्रों के अंतरतम की गहराइयों की थाह लेने की चेष्टा यहाँ

हुई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध का केन्द्र-बिन्दु तो प्रेमचन्द तथा जैनेन्द्र के नारी-पात्रों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है । अतः इसे तीन अध्याय दिए गए हैं । उभय की नारी-चरित्र सृष्टि और एतद्विषयक विभावना को स्पष्ट करते हुए बताया है कि कई बार दो महान प्रतिभाशाली लेखकों के पात्रों को आमने-सामने रखके उनके गुणबोध को पाया जा सकता है । यहां संबंधी नारी-पात्रों का होने के कारण पात्रों के विभिन्न कोणों को देखने परखने का लक्ष्य रहा है । यह विश्लेषण अनेक दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए किया गया है, जिनमें वय या अवस्था, परिवेश, सभ्यता-संस्कृति, युगीन स्थितियाँ, चारित्र इत्यादि मुख्य हैं ।

पंचम अध्याय में दोनों के तुलनीय नारी पात्रों का उल्लेख करते हुए तुलनात्मक अध्ययन के अभिप्राय को स्पष्ट किया गया है । इस अध्याय में नारी-पात्रों का तुलनात्मक अनुशीलन पात्र-वर्गीकरण की दृष्टि से किया गया है । औपन्यासिक आलोचनात्मक ग्रन्थों में पात्रों का वर्गीकरण कई दृष्टियों से किया गया है जिनमें निम्नलिखित चार मुख्य हैं — [क] सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर, [ख] ई. एम. फारस्टर का वर्गीकरण, [ग] पात्रों की प्रधानता के आधार पर और [घ] मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर । सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर जो वर्गीकरण प्राप्त होता है उसमें भी चार प्रकार के चरित्र बताए गए हैं — 1. वर्गीकृत चरित्र, 2. वैयक्तिक चरित्र, 3. स्थिर चरित्र और 4. गतिशील चरित्र । ई. एम. फारस्टर ने द्विपरिमाणी पात्र, त्रिपरिमाणी पात्र, पत्ता-पात्र के रूप में वर्गीकरण किया है । पात्रों की प्रधानता के आधार पर मुख्य पात्र, गौण पात्र, पार्श्वभूमिक पात्र, विदूषक पात्र जैसे प्रकार सामने आते हैं; तो मनोवैज्ञानिक आधारों पर अंतर्मुखी, बहिर्मुखी, आत्मपीड़क, परपीड़क, ग्रन्थियुक्त

पात्र जैसे पात्र उपलब्ध होते हैं । प्रस्तुत अध्याय में उपर्युक्त आधारों पर दोनों महारथियों के नारी पात्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है ।

छठे और सातवें अध्याय में भी विविध आयामों और आधारों पर तुलना का उपक्रम रहा है । छठे अध्याय में परिवेश , विरुद्धता [Contrast] , नायिकाओं के प्रति , शिक्षा , व्यवसाय , आर्थिक समस्या आदि की दृष्टि से दोनों के नारी-पात्रों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है ।

सातवें अध्याय में जिन आधारों को लिया गया है वे इस प्रकार हैं — अवस्था की दृष्टि से , विधवा नारी-पात्र , उभय में प्रेमिकाओं का चित्रण , उभय में दलिताओं का चित्रण , उभय में मनोवैज्ञानिक दृष्टि , विश्वसनीयता की दृष्टि से उभय के नारी पात्रों पर विचार , आदर्शवाद और यथार्थवाद की दृष्टि से उभय की नारी-दृष्टि पर विचार , उभय में आत्मपीड़क और संवेदित चरित्र , वेश्या समस्या की दृष्टि से उभय के नारी पात्र , उभय की औपन्यासिक दृष्टि में पतिव्रता-विषयक अवधारणा , ऐतिहासिक रूढ़ियों की दृष्टि से उभय की नारी-दृष्टि , उभय की नारी-दृष्टि में विदेशी महिलाओं का चित्रण , अंतरराष्ट्रीय विवाह की दृष्टि से उभय के नारी पात्र , उभय में देश-विदेश घूमी नारियों का चित्रण , विधवा महिलाओं का चित्रण , अंतर्जातीय विवाहों का चित्रण , उभय में स्वकीया-परकीया नायिकाएं , उभय की कथा-दृष्टि में कुछ प्रकार की स्त्रियों का चित्रण तथा उभय के औपन्यासिक नारी पात्रों में अविस्मरणीय नारी-पात्रों की सृष्टि ।

व्यक्ति के निर्माण में , उसके चरित्र-विकास में , वय या अवस्था का महत्व अपरिहार्य है । एक शिशु , एक किशोर , एक युवा, एक प्रौढ़ और एक वृद्ध व्यक्ति के चिंतन में एक निश्चित अंतर तो मिलेगा ही । कई बार एक प्रौढ़ या वृद्ध व्यक्ति , चाहे वह अनपढ़

या अशिक्षित ही क्यों न हो, ऐसी बात कर देते हैं कि बड़े-से-बड़ा विद्वान वैसी बात नहीं कर सकता। वस्तुतः यह विषय एक बहुत बड़ी युनिवर्सिटी है। जीवन के विविध-प्रसंग, जीवन-संघर्ष, उसके घात-प्रतिघात, उसके व्यक्तित्व-पिंड को आकार देते हैं। इसमें परिवेश, शिक्षा, कार्यक्षेत्र और युगीन प्रभाव आदि का महत्त्व भी होता है। शोध में इन सब आधारों पर उभय के नारी-पात्रों को तुलनात्मक दृष्टि से परखा गया है। यहाँ तुलना के पीछे श्रेष्ठता या हीनता का आग्रह नहीं है, परन्तु दोनों महान लेखकों ने अपनी-अपनी दृष्टि के तहत नारी-पात्रों का जो निरूपण किया है, उसके आलोक में नारी-हृदय की तस्वीरें उकेरने का यथा शक्ति प्रयास किया है।

अंतिम अध्याय "उपसंहार" का है। कई विद्वान "उपसंहार" को अलग अध्याय न मानकर, उसे प्रबंध के ही एक परिशिष्ट के रूप में प्रस्तुत करते हैं। परन्तु यहाँ हमने "उपसंहार" को भी एक पृथक अध्याय के रूप में दर्शाया है। वस्तुतः शोध-प्रबंध में इस अध्याय का आकार-प्रकार अन्य अध्यायों की तुलना में छोटा होता है, परन्तु उसका महत्त्व अनिवार्य है। यदि किसी ग्रन्थ या पुस्तक में "उपसंहार" न हो तो उसे उस विषय पर लिखी हुई पुस्तक तो कह सकते हैं, शोध-प्रबंध नहीं। हमने इसमें कोई नया मुद्दा न उकेरते हुए समग्र प्रबंध से निष्कर्ष या सारनवनीत को प्रस्तुत किया है। यहाँ बहुत संक्षेप में विषय की उपलब्धियाँ तथा भविष्यत् संभावनाओं को भी संकेतित किया गया है।

"उपसंहार" को छोड़कर शेष सभी अध्यायों के अन्त में समग्रावलोकन की प्रक्रिया के द्वारा निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। उसके पश्चात् सन्दर्भानुक्रम दिया गया है। उसमें यथासंभव वैज्ञानिक दृष्टि का निर्वाह किया गया है। शोध-प्रबंध के अन्त में "सन्दर्भिका" (Bibliography) के अन्तर्गत वैज्ञानिक विधि से

अकारादिक्रम से ग्रन्थानुक्रमणिका प्रस्तुत है ।

इस कार्य को सुचारु रूप से संपन्न कर सकी , उसके पीछे अनेक महानुभावों का प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान रहा है । उन सबके प्रति मैं श्रद्धावनत हूं । प्रबंध में जिन विद्वानों के ग्रन्थों या लेखों से मैंने सहायता ली है , उन्हें बाकायदा संदर्भित किया गया है । उन सब विद्वानों को मेरे कोटि-कोटि प्रणाम ।

शोध-प्रबंध का कार्य बहुआयामी और श्रम-साध्य होता है । उसमें धैर्य और तितिक्षा की परीक्षा होती है । अतः इस समग्र प्रक्रिया में मुझे मेरे परिवारजनों से प्रोत्साहन व प्रेरणा मिलते रहे हैं । किन्तु वे तो मेरे परिवारवाले हैं । उनका आभार मानना धृष्टता में शामिल होगा । किन्तु यहाँ मेरे पिता त्रिलोकीनाथ तथा माता सोनादेवी के आशीर्वाद मैं अवश्य पाहूंगी । बहन ममता तथा भाई अनुराग को कैसे विस्मृत कर सकती हूं । मेरी सुहृदा मित्र प्रताप हाईस्कूल की आचार्या सुश्री सुधाबहिन पटेल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना भी मेरा परम कर्तव्य है ।

गुजरात के हिन्दी आचार्यगण में प्रोफेसर मदनगोपाल गुप्त , प्रो. अंबाशंकर नागर , प्रो. रमणभाई पटेल , प्रो. महावीरसिंह चौहान , प्रो. जे.पी. त्रिवेदी , प्रो. सनतकुमार व्यास , प्रो. शिवकुमार मिश्र , प्रो. दयाशंकर शुक्ल , प्रो. पारूकान्त देसाई प्रभृति गुरुवर्यों का आशीर्वाद मुझे समय-समय पर मिलता रहा है , अतः इन सबके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं ।

यह कार्य मैंने हिन्दी विभाग , बड़ौदा युनिवर्सिटी के अन्तर्गत किया है । विभाग के प्रवर्तमान प्राध्यापकों में से कई मेरे गुरु रहे हैं । इनमें प्रो. अभयकुमार गोस्वामी , प्रो. प्रेमलता बाफना

[ये दोनों सम्प्रति कुछ समय पहले निवृत्त हो चुके हैं ।]. वरिष्ठ रीडर तथा साम्प्रत विभागाध्यक्षा डा. अनुराधा दलाल , वरि रीडर डा. भगवानदास कहार , पादरा कालेज के प्राचार्य तथा वरिष्ठ रीडर डा. वामन अहिरे , वरिष्ठ रीडर डा. विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी , डा. ओ.पी. यादव , डा. शैलजा भारद्वाज प्रभृति के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । इनके अतिरिक्त विभाग के अन्य प्रवक्ताओं में डा. दक्षा मिस्त्री , डा. कल्पना गवली डा. शान्ती पाँडेय , डा. एन.एस. परमार के प्रति भी उनके सहयोग के कारण अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ ।

अन्ततः इस समग्र शोध-प्रविधि में जो सदैव मेरे साथ रहे हैं और जिनके बहुमूल्य मार्गदर्शन के अभाव में यह कार्य इस रूप में संपन्न न हो पाता , ऐसे मेरे गुरु परम आदरणीय प्रोफेसर तथा पूर्व-अध्यक्ष , हिन्दी विभाग , डा. पारुकान्त देसाई साहब के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति निवेदित करती हूँ । उनकी शिष्य-वत्सलता , ज्ञान-प्रतिष्ठता तथा पूर्णता तथा उच्च-लक्ष्य का आग्रह मेरे जीवन-पथ को सदैव आलोकित करता रहे यही अभ्यर्थना । उनकी धर्मपत्नी श्रीमती लीलाबहिन चतुर्वेदी का भी मुझ पर बड़ा स्नेह रहा है । अतः इस अवसर पर उन्हें प्रणाम करना भी मेरा कर्तव्य है ।

पी-एच.डी. के लिए शोधकार्य साहित्यानुशीलन व अनुसंधान के मार्ग में प्रथम पड़ाव के रूप में होता है । कुछ-कुछ दृष्टिगोचर होने लगता है । चिंतन के कुछ गवाक्ष कुछ-कुछ खुलने लगते हैं । मेरी परम पिता ईश्वर से प्रार्थना है कि मेरी यह ज्ञान-यात्रा अनवरत रहे । शोध-कार्य भी मानव-शक्ति की सीमा और मर्यादा से परे नहीं होता । मैं अपनी सीमाओं और अक्षमताओं से परिचित हूँ , अतः सुज्ञ विद्वज्जनों के प्रति क्षमाप्रार्थी हूँ । मेरा

यह कार्य यदि भविष्यत् अध्येताओं के मार्ग को यत्किंचित भी निष्कंटक कर सकें तो अपने इस सारस्वत- श्रम को मैं सार्थक समझूंगी । अन्त मैं कवि अज्ञेय की निम्नलिखित पंक्तियों के साथ विरमती हूं —

" मैं आस्था हूं, तो मैं निरंतर उठनेकी शक्ति हूं ;
मैं छाया हूं, तो मैं मुक्ति का प्रयास हूं,
मैं गाथा हूं, तो मैं मानवता का अलिखित इतिहास हूं ।

x x x

मैं शैली हूं जिसे विश्राम नहीं,
जो है मैं उसे बदलता हूं,
जो होगा उसे मुझे तो लाना है ।।

— अज्ञेय (चुनी हुई रचनाओं से)

दिनांक : 27-11-2006
गोत्रीलाव,
वडोदरा.

विनीता,

(शकुन्तला टी. द्विवेदी)